© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

# बिहार में जमीन्दारी उन्मूलनः एक समीक्षात्मक अध्ययन

**डॉ० प्रियंका कुमारी**
एम.ए., पीएच.डी.
इतिहास, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय,
मुजफ्फरपुर।

बिहार में जमीन्दारों का इतिहास बहुत दागदार रहा है। जमींदार सवर्ण हो या किसी पिछड़े वर्ग का, उनके अत्याचार करने के तरीके एक समान हैं। दोनों बहुत ही बर्बर और भयावह रास्ता अख्तियार करते हैं, अपने विरोधियों का सफाया करने के लिए इनकी एक ही जाति है– अमीरी और शानो–शौकत। बस अपना साम्राज्य बचाना ही इनका मुख्य उद्देश्य है और यदि इसको बचाने के लिए खून की नदियाँ भी बहानी पड़े, तो इनको इससे गुरेज नहीं।

कांग्रेस और जमींदारों के बीच 4 जुलाई 1938 को एक समझौता हुआ जिसके बिन्दु थे :–

1. सिविल कोर्ट द्वारा कुर्की आदेश होने पर इसे राजस्व अदालत में स्थानांतरित कर दिया जाएगा।
2. अगर रैयत ने 1937 का अधिनियम लागू होने के बाद लगातार चार वर्षों तक लगान का भुगतान नहीं किया तो जमींदार बकाया लगान के लिए मुकदमें दायर कर सकता है। अगर रैयत अंतिम मुकदमा दायर होने के बाद भी लगान नहीं चुकाता है तो उस अवधि के लगान के बकाये की उगाही के जिए जमींदार केस दायर कर सकता है।

   ऐसे मामलों में अगर अदालत सभी परिस्थितियों पर विचार करने के बाद संतुष्ट हो जाती है कि लगान न चुकाने का ऐसा कोई कारण नहीं हैं तो रैयत के काबू के बाहर हो, तब वह बकाया रखनेवाले उस रैयत को अद्यतन बकाया रखनेवाला घोषित कर सकती है। अदालत की यह डिक्री यह निर्देश भी दे सकती है कि डिक्री को लागू करने के लिए रैयत की पूरी जोत को बेच दिया जाये, जिसमें अदालत को, अदालत द्वारा निर्धारित दाम या उससे ज्यादा पर बेचने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। अगर अदालत उसके सामने

पेश किये गये सबूत के आधार पर संतुष्ट हो जाएगी कि बकायेदार रैयत इस धारा के लागू होने से कतरा रहा है, तब वह आदेश दे सकती है कि चार साल तक बकाया रखने पर, चाहे वे चार साल लगातार हों या नहीं, रैयत को अगले मुकदमें में आदतन बकायादार घोषित किया जा सकता है।

3. अगर साझेदार जमींदारों को बिहार रैयती कानून के अधीन किसी मुकदमें या कार्यवाही में एक पक्ष बनाने के लिए यह प्रावधान कारगर हो, तब नये प्रावधान की जरूरत नहीं है। लेकिन अगर ऐसा नहीं हो तो विशेष प्रावधान किया जाना चाहिए ताकि साझेदार जमींदार धारा 121 के अधीन, अन्य साझेदार जमींदारों को पक्ष बनाकर कार्रवाई कर सके।
4. सरकार लगान में की गई कमी के अनुपात में जमींदार द्वारा दिये जाने वाले सेस में कटौती करने के लिए फौरन एक विधेयक पेश करेगी ताकि लगान में जितनी राशि घटायी जाएगी या माफ की जाएगी उतनी सेस की राशि स्थायी रूप से घटायी जा सके।

   बिहार रैयती कानून की धारा 55 में ऐसा संशोधन किया जाएगा जिससे जमींदार को बकाया लगान की पूरी वसूली का अधिकार मिलेगा (जिस पर कोई सीमा नहीं होगी), रैयत चाहे इसके विपरीत कुछ भी ऐलान करता हो।
5. अगर सरकार देखती है कि छः महीने की अवधि के बाद भी लगान का भुगतान उस तरह नहीं होता है जैसा कि सामान्य परिस्थितियों में होना चाहिए, तब सरकार कानून बनाकर या अन्य तरीके से यह गारंटी करेगी कि लगान का भुगतान हो सके। इसके अलावा, सरकार एक बयान जारी करके रैयतों को चेतावनी देगी कि अगर लगान का भुगतान नहीं किया जाएगा तो रैयतों को सरकार के द्वारा विशेष सुरक्षा देना न्यायोचित नहीं होगा। इसी तरह उम्मीद की जाती है कि समझौते की शर्तों के मुताबिक जमींदारों की जो जिम्मेदारी है, उनको पूरा करने के लिए अधिकतम प्रयास करेंगे। जो जमींदार उसे पूरा करने में विफल रहेंगे उनको अगर मुसीबत का सामना करना पड़ेगा तो इसके लिए वे खुद जिम्मेदार होंगे, न कि सरकार।
6. चूँकि इस समझौते को प्रांतीय कांग्रेस कमिटी की स्वीकृति प्राप्त है, इसीलिये यह स्वाभाविक है कि हरेक निचली कमिटी और हरेक कांग्रेस सदस्य इसका समर्थन करे। जो

भी कांग्रेस सदस्य या कमिटी इस समझौते का विरोध करेगा उसको मालूम होना चाहिए कि उसके खिलाफ अनुशासनिक कार्रवाई करने के लिए कांग्रेस संगठन काफी ताकतवर है।

7. मौलाना अबुल कलाम आजाद कांग्रेस की ओर से एक बयान जारी करेंगे जिसमें कहा जाएगा कि चूँकि जमींदारों ने सारी शर्तें मान ली है, अतः अब यह कांग्रेस की जिम्मेवारी है कि वह शांतिपूर्ण वातावरण कायम करे और लगान का भुगतान हो।
8. भूधारी संघ भी एक बयान जारी करके जमींदारों से अपील करेगा कि वे समझौते की शर्तों को लागू करें। जो कोई जमींदार इस समझौते की मुखालफत करेगा वह सदस्य नहीं रह जाएगा और उसको हमारा समर्थन नहीं मिलेगा।
9. एक बोर्ड की स्थापना की जायेगी जिसको राजस्व संबंधी तमाम मामलों के निष्पादन करने का अधिकार होगा। इसके तीन सदस्य होंगे, एक भूधारी संघ का प्रतिनिधि, एक कांग्रेस का प्रतिनिधि और एक राजस्व बोर्ड का सदस्य।[1]

इस बात पर सहमति बनी कि पारा संख्या 6 से 9 तक को प्रचारित नहीं किया जायेगा।[2] जमींदारों की ओर से सर सी. पी. एन. सिंह और राय बहादुर श्याम नंदन सहाय ने कहाः

इससे हमें बड़ी राहत मिली...यह जानकर कि रैयती कानून पारित करने के रास्ते की अंतिम बाधा दूर हो गई और जिन बिन्दुओं पर मतभेद थे उनपर समझौता हो गया।[3]

मौलाना आजाद ने जमींदारों की उदारता की प्रशंसा की, जिन्होंने 'आदतन बकायेदार' की व्याख्या करने में उनके साथ सहयोग करके अंतिम क्षणों में आये गतिरोध को दूर किया और समझौते को फेल होने से बचा लिया।[4] राजेन्द्र प्रसाद ने समझौते को फैजपुर कांग्रेस के चिंतन के अनुरूप बताकर न्यायोचित ठहराया। उन्होंने किसान सभाईयों और सोशलिस्टों का मुँह बंद करोन की कोशिश की, जो फैजपुर कांग्रेस के चिंतन की कसमें खा रहे थे।[5] समझौते को कई कानून बनाकर वैधानिक प्रभाव दिया गया, जैसे बिहार बकास्त जमीन वापसी एवं लगान घटाव अधिनियम 1938, बिहार बकास्त विवाद निपटारा अधिनियम 1947 और बिहार रैयती (संशोधन) अधिनियम।

बिहार कांग्रेस नेतृत्व किसानों को काफी राहत दिलाने में सक्षम साबित हुआ। इसी वजह से यह संभव हुआ कि किसान सभा के पीछे चलने वाली अधिकांश जनता कांग्रेस नेतृत्व की तरफ आ गई। इसने जमींदारों और अंग्रेजों के बीच वर्षों के दौरान बने संबंधों पर चोट की। किसान और जमींदार दोनों कांग्रेस को अपना शुभचिंतक मानने लगे। इसने यह भी दिखाया कि किसान सभाइयों के आंदोलनात्मक और शून्यवादी रास्ते से किसानों को कोई भी राहत और शांति नहीं दिलायी जा सकती। स्वामी जी के पास देने को कुछ भी सकारात्मक नहीं था। इस विचार की पुष्टि के लिए गया में 9–10 अप्रैल 1939 को सम्पन्न अखिल भारतीय किसान सम्मेलन की कार्यवाही और प्रस्तावों पर एक नजर डालना काफी होगा। इसने 'ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के मित्र प्रतिक्रियावादी जमींदारों के साथ किये गये समझौते' को खत्म करने का आह्वान किया।

कांग्रेस थोड़े समय तक ही सत्ता में रही। वह कृषि संबंधों के अत्यंत महत्वपूर्ण मूलगामी पुनगर्ठन के काम को हाथ में न ले सकी। 1946 के बिहार विधानसभा चुनाव के बाद ही उसने इस सवाल को हाथ में लिया। 1946 के अपने चुनाव घोषणा पत्र में इसने कहाः

'भूमि प्रणाली का सुधार भारत में फौरी जरूरत है। इसमें शामिल है किसान और राजसत्ता के बीच के बिचौलियों का उन्मूलन। ऐसे बिचौलियों के अधिकार को सम्यक मुआवजा का भुगतान करके हासिल किया जाना चाहिए।'[6]

1946 की रणनीति वह नहीं थी जो 1937 से 1939 में थी। आजादी आने ही वाली थी। सबसे महत्वपूर्ण काम एक आधुनिक औद्योगिक अर्थतंत्र का निर्माण था जिसके लिए कृषि का आधुनिकीकरण अनिवार्य था। कृषि संबंधों के मूलगामी पुनर्गठन के बिना किसानों की पहल को मुक्त करना असंभव था। कारण यह कि जमींदारी प्रथा के जारी रहते और मध्यवर्ती कास्तकारी के फैलते रहते यह मुमकिन नहीं था कि किसानों को उत्पादन बढ़ाने के लिए कृषि में निवेश की प्रेरणा मिलती, न उनके पास निवेश के लिए आवश्यक साधन ही जमा होता। अधिकांश रैयतों के लिए अपनी जोत की जमीन पर दखल का अधिकार प्राप्त करना मुश्किल था। भविष्य की अनिश्चितता जमीन जोतने वालों को हमेशा सताती रहती थी।

खाद्यानों और औद्योगिक कच्चे मालों की बढ़ती मांगों को पूरा करने के लिए निर्यात आय बढ़ाने के लिए घरेलू बाजार के विस्तार के लिए कृषि उत्पादन का फैलाव आवश्यक था। इन उद्देश्यों की पूर्ति सिर्फ परजीवी जमींदार वर्ग के प्रभुत्व को हटाने के बाद हो सकती थी।

बिहार में कांग्रेस के भूमिहार गुट के तमाम नेता जमींदारी उन्मूलन के पक्ष में थें, हालांकि वे जमींदारों के लिए बेहतर शर्तों के पक्ष में भी थे। वे दूरदृष्टि वाले लोग थे। उन्हें पता था कि इस कदम से वे सभी जातियों के रैयतों को अपने नेतृत्व में गोलबंद कर लेंगे और बिहार की राजनीति पर उनका दबदबा कायम हो जाएगा। इसके अलावा भूमिहार किसानों की तरक्की होगी क्योंकि वे मेहनती और प्रगतिशील हैं। राजपूतों और कायस्थों के गुट में इस दूरदृष्टि की कमी थी। राजपूत और कांग्रेस में उनके नेता आधुनिकता पूर्व रूझानों और मूल्यों से ग्रसित थे और कांग्रेस के कायस्थ नेतृत्व को वास्तविकता का ज्ञान नहीं था क्योंकि शायद ही कोई कायस्थ किसान था। दरअसल, कायस्थ जमींदारी मामलों की मैनेजरी से जुड़े थे। उनमें एक ही अपवाद थे कृष्ण वल्लभ सहाय। वह जमींदारी उन्मूलन के पक्षधर थे। अपने जिला हजारीबाग के राजनीतिक अनुभव से और प्रदेश स्तर के राजनीतिक अनुभव से भी उन्होंने महसूस किया था कि भूमि सुधारों को लागू किये बगैर वह बिहार सरकार में चोटी के पद तक नहीं पहुँच सकते। जिला में राजा रामगढ़ कामाख्या नारायण सिंह उनको परेशान करते थे और प्रदेश स्तर पर राजनीति में राजपूत और भूमिहार नेताओं का बोलबाला था। के. बी. सहाय के सामने इस या उस नेता का पिछलग्गू बनने के सिवा कोई विकल्प नहीं था। 1930 के दशक के उत्तरार्द्ध में उन्होंने गुट बदलकर श्रीकृष्ण सिन्हा का दामन थाम लिया। जल्द ही वह श्री बाबू के सिपहसालारों में गिने जाने लगे। दरअसल यह उनके हितों का गठबंधन था। वह भूमि सुधार के कदमों को आगे बढ़ाने में, खासकर जमींदारी उन्मूलन कानून बनाने में, बढ़–चढ़ कर हाथ बँटाने लगे।

जमींदारी उन्मूलन का विरोध केवल जमींदारों ने ही नहीं बल्कि बिहार कांग्रेस के कायस्थ राजपूत गुट ने भी किया। बिहार विधानसभा ने जमींदारी उन्मूलन का प्रस्ताव पास किया। इसी के आलोक में जमींदारी राजकीय अधिग्रहण विधेयक 1947 पेश होने वाला था। सरकार के प्रधान श्री कृष्ण सिंह विधेयक पेश करने वाले थे। सरदार वल्लभ भाई पटेल के

निर्देश पर विधेयक पेश होने में देर हुई। श्रीकृष्ण सिन्हा ने विधयेक की पेशी को अनिश्चित काल तक लटकाये रखने से 'विनम्रातपूर्वक इन्कार' कर दिया, क्योंकि 'मंत्रिमंडल के अधिकांश सदस्य इस कदम के पक्ष में थे और पार्टी का विशाल बहुमत इस विधेयक की पेशी का समर्थक था।''[7]

श्री कृष्ण सिन्हा के लिए उस विधेयक को पेश करने में जल्दबाजी का बहुत बड़ा कारण था। कुछ हलकों द्वारा प्रयास किया जा रहा था कि बिहार के बड़े जमींदारों को कांग्रेस में शामिल किया जाये। 1946–50 के दौरान किये गये ये प्रयास अगर सफल हो जाते तो कांग्रेस में भूमिहार गुट के वर्चस्व को धक्का लगता। 1950 के दशक के दौरान जमींदारों के लिए कांग्रेस के दरवाजे खुल गये। लेकिन तब तक वे आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से काफी कमजोर हो चुके थे।

जमींदारी राजकीय अधिग्रहण विधेयक 1947 विधानसभा में पेश हुआ। उसे सदन की प्रवर समिति को सौंपा गया जिसने अपनी रिपोर्ट 28 फरवरी 1948 को विधानसभा को सौंपी। 'आगे चलकर विधेयक का नाम बदलकर ''बिहार जमींदारी उन्मूलन विधेयक 1947' रखा गया। विधान मंडल के दोनों सदनों द्वारा पारित होने के बाद इसे गवर्नर जनरल की स्वीकृति के लिए सुरक्षित रखा गया। केन्द्रीय और राज्य सरकारों के बीच बातचीत के बाद इसे विधानसभा को, केन्द्र और राज्य सरकारों के सहमति से संशोधनों की सिफारिशों के साथ, फिर से विचार के लिए वापस भेजा गया। विधान मंडल के दोनों सदनों द्वारा संशोधन के साथ पारित होने के बाद गवर्नर जनरल ने 6 जून 1949 को विधेयक पर हस्ताक्षर किया और इसे बिहार जमींदारी उन्मूलन अधिनियम 1948 के रूप में प्रकाशित किया गया।'[8]

प्रवर समिति की रिपोर्ट सर्वसम्मत नहीं थी। जमींदार सदस्य कामाख्या नारायण सिंह, सी. पी. एन. सिंह, श्यामनंदन सहाय, रामेश्वर प्रसाद सिंह, तारानंद सिंह और ताजमुल हसन खाँ ने असहमति की टिप्पणी प्रस्तुत की। उन्होंने विधेयक के औचित्य और इसके विभिन्न प्रावधानों पर सवाल उठाये।[9]

प्रवर समिति की सिफारिशें काफी हद तक विधेयक में शामिल की गई। इस पर जमींदारों, आम तौर से और कामाख्या नारायण सिंह, ने खास तौर से बहुत शोर मचाया। टाटा

के नेतृत्व में कई व्यावसायिक घरानों ने भी उनके सुर में सुर मिलाया। यहाँ उल्लेखनीय है कि छोटानागपुर में कार्यरत अधिकांश व्यावसायिक घरानों ने मध्यवर्ती कास्तकारी या जमींदारियाँ ले रखी थी। मिसाल के लिए टाटा ने 18 गाँवों में जमींदारी अधिकार ले रखा था, जिसको उसकी कम्पनी– धालमूल सिंडिकेट ने धालमूल के राजा से पट्टा पर लिया था। इसके तुरंत बाद सिंडिकेट ने 18 गाँवों में अपने तमाम अधिकार 15 अप्रैल 1908 को टिस्को को हस्तांतरित कर दिया। इस तरह टिस्को छोटानागपुर रैयती कानून के मुताबिक बाजाब्ता पट्टाधारी हो गया। यह सचमुच विचित्र बात थी कि टाटा को आधुनिक पूंजीवादी उद्यम चलाने के लिए पूंजीवाद पूर्व कृषि संबंधो की मदद की जरूरत पड़ी।[10]

**संदर्भ सूची :–**


1. राजेन्द्र प्रसाद के कागजात, फाइल सं.– 1–ए/38, संग्रह सं. 1।
2. वही।
3. दी इंडियन नेशन, 6 जुलाई 1938।
4. वही,।
5. राजेन्द्र प्रसाद के कागजात, फाइल सं.– 1–ए/38, संग्रह सं. 1।
6. एच. डी. मालवीय, लैंड रिफार्म्स इन इंडिया, नई दिल्ली, 1954, पृ. 75 में उद्धृत।
7. वाल्मीकि चौधरी (सं.) पूर्वोक्त, खंड–7, पृ. 186।
8. एच. डी. मालवीय, लैंड रिफार्म्स इन इंडिया, नई दिल्ली, 1954, पृ. 205–206
9. रिपोर्ट ऑफ द सेलेक्ट कमिटी आन द बिहार स्टेट एक्जीविशन ऑफ जमींदारी बिल, 1948, पृ. 5–11।
10. गिरीश मिश्र, 'टाटाज एंड द बिहार यूनाईटेड फ्रंट गवर्नमेंट, मेनस्ट्रीम, 9 मार्च 1968 में।


♦♦♦♦♦